|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

# || श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

**अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग**

3/3 (श्लोक 20-28), रविवार, 23 मार्च 2025

**विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल**

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/-h5RmMm2AvM

## दान के साथ श्रद्धा अनिवार्य

श्री हरिनाम सङ्कीर्तन के पश्चात इस सत्र का आरम्भ हुआ। श्रीभगवान् की अतिशय कृपा से हम लोगों का ऐसा भाग्य जाग्रत हुआ है कि इस जीवन को परमोच्च लक्ष्य पर पहुँचाने के लिए, इस जीवन में और इस जीवन के बाहर अपने पारलौकिक उद्धार के लिए और अपने मानव जन्म का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए हम श्रीमद्भगवद्गीता में प्रवृत्त हुए हैं। पता नहीं हमारे इस जन्म के पुण्य कर्म हैं या हमारे किसी पूर्वजन्म के सुकृत हैं, हमारे पूर्वजों के सुकृत हैं अथवा किसी जन्म में किसी सन्त महापुरुष की कृपा दृष्टि हम पर हुई जिस कारण हम श्रीमद्भगवद्गीता में प्रवृत्त हुए और चुने गए गीता जी पढ़ने के लिए।

संसार में इसके सिवा दूसरा कोई भी कल्याणोपयोगी ग्रन्थ नहीं है। परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्री दीनदयाल गोयन्दका जी ने कहा कि शास्त्रों का अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि श्रीमद्भगवद्गीता के सामान मनुष्य का कल्याण करने वाला कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।

पिछली बार हमने देखा-

**मनः प्रसादः सौम्यत्वं'**

अर्थात् मन को सदा प्रसन्न रखना। श्रीभगवान् ने इसको मन का तप कहा है। यह कितनी प्रकार से हो सकता है, यह हमने पिछली बार देखा। हमारी वाणी कैसी होनी चाहिए? हमारे शरीर के तप कैसे होने चाहिए? इसका भी चिन्तन किया। तीन प्रकार के सात्त्विक, राजस व तामस तप को हमने शारीरिक, वाचिक और मानसिक रूप में श्रीभगवान् के द्वारा वर्णित उन्नीस श्लोकों तक देखा। बीसवें श्लोक से श्रीभगवान् दान की बात आरम्भ करते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन, दान भी तीन प्रकार के होते हैं।

**17.20**

**दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|**
**देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||**

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया

जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

**विवेचन-** दान देना ही कर्त्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल, पात्र का विचार करके, उपकार न करने वाले के प्रति किया जाता है और उसके बदले में कुछ न चाहा जाये, ऐसा दान सात्त्विक दान कहलाता है।

हमारे यहाँ धर्मशतक नामक एक सुन्दर ग्रन्थ है। उसमें कहा गया है कि- **चार युग हैं- सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग**।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा-

**प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।**

अर्थात् धर्म के चार चरण (सत्य, दया, तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक (दान रूपी) चरण ही प्रधान है।

भगवद्गीता में कहा गया है-

**सत्यम, दया, तपो, दानं।**

धर्म के चार पद होते हैं, सत्य, दया, तप और दान।

**सतयुग** में चारों पद हैं। वहाँ पर सत्य का पूर्ण पालन होता है। कठोर तपस्या का पालन करते हुए मानव दिखते हैं। दया का पूर्ण प्रादुर्भाव होता है और वह दान में पूरा होता है।

इसके बाद **त्रेता युग** आता है। इसमें सत्य का ह्रास होता है।

**द्वापर** में सत्य और दया दोनों का ह्रास हो जाता है।

**कलियुग** आते-आते तप का भी ह्रास हो जाता है। अब मात्र एक पद बचता है और वह है दान, इसलिए मनुस्मृति में कहा गया है-

**दानमेकं कलौ युगे**

कलियुग में धर्म का एकमात्र पद दान है।

धर्मशतक के चर्तुदंश में आज हम दान पचीसी देखेंगे अर्थात् पच्चीस प्रकार के दान।

1-**अर्थ दान**- यह सबसे सरल दान है, चाहे स्वर्ण का करें अथवा रुपये का।

2-**भूमि दान**- इसकी बड़ी महिमा है। मन्दिर, अस्पताल, विद्यालय बनाने के लिए, किसी संस्था का कार्य करने के लिए, वेद, गीता का काम करने के लिए भूमि का दान किया जाए।

3-**अन्न दान-** अन्न दान, महादान। इसकी विशेषता यह है कि इसके लिए कोई कुपात्र नहीं है। बाकी दान में सुपात्रता का विचार करना पड़ता है। श्रीभगवान् कहते हैं-

**देशे, काले, च पात्रे च।**

इन तीनों का विचार करके दान दो। अन्न दान में इनके विचार करने का विधान नहीं है। जो भूखा है उसको अन्न दो, चाहे वह कोई बदमाश, खराब, अपराधी व्यक्ति ही क्यों न हो।

4-**अन्न और औषधि-** ये दोनों दान देने में पात्रता का विचार नहीं करना है।

5-**वस्त्र दान**- हम अमावस्या, एकादशी पर ब्राह्मणों को वस्त्र दान देते हैं। गरीबों को वस्त्र दान देना चाहिए। लोग सर्दी में कम्बल बाँटते हैं।

6-**प्राण दान**- यह राजा के लिए ही सम्भव है, बाकी के लिए नहीं है। किसी ने अपराध किया, उसे प्राण दान दिया जाए।

7-**यश का दान**- कार्य मैंने किया परन्तु यश किसी और को दे दिया।

8-**प्रसन्नता का दान**- जिससे मिलो, मुस्कुरा कर मिलो। (whenever you meet someone, smile) आप किसी को मुस्कुराकर मिले तो उसे न चाहते हुए भी मुस्कुराना पड़ता है। कुछ क्षण के लिए उसे अपनी उलझनों, दुःख-दर्द से बाहर आना ही पड़ेगा। यह बहुत बड़ा दान है। इसमें कोई मेहनत, रुपया-पैसा नहीं लगता। जब जिससे मिलो, मुस्कुरा कर मिलो। जब जिसके पास बैठो, प्रसन्नता की बातें करो, मीठी-मीठी बातें करो। अपना मन प्रसन्न है और प्रसन्न मन से हम दूसरों को प्रसन्न करते हैं। अच्छी-अच्छी सकारात्मक बातें करो, नकारात्मक बातें नहीं। दूसरा करे तो उसको भी टाल दो। दूसरा नकारात्मक बातें करे तो सुन लेना फिर टाल देना। कह देना, कोई बात नहीं, सब अच्छा हो जाएगा। मात्र इतना कहने से भी लोगों को बहुत बड़ा सम्बल और समाधान मिल जाता है। हम तुम्हारे लिए श्रीभगवान् से प्रार्थना करेंगे, सब ठीक हो जायेगा। सामने वाले का कितना भी बड़ा दुःख क्यों न हो, उसे अति प्रसन्नता का भाव मिलेगा।

9-**अधिकार दान-** अपने अधिकारों का दान करो। मेरा अधिकार है आगे रहने का और मैं स्वयं को पीछे कर दूसरे को आगे कर दूँ। (donate your rights) यह सुनने में सरल लगता है पर है कठिन। हम पूरी जिन्दगी अपने अधिकारों के लिए झगड़ते रहते हैं। यहाँ विरोधाभास है, अधिकारों के लिए झगड़ने के स्थान पर उसका दान करो। मैं घर में सबसे बड़ा हूँ, मुझे सबसे पहले भोजन करना चाहिए पर आज पहले बच्चे भोजन करेंगे। यह है अपने अधिकार का दान।

छोटी-छोटी बातें है। जहाँ पर भी मेरा अधिकार है, उसे छोड़ना आरम्भ करूँ। इससे जीवन श्रेष्ठ हो जाता है। परिवार में आपस में सम्बन्ध मधुर हो जाते हैं। प्रेम के घटने का कारण ही होता है, अधिकारों का सङ्घर्ष। जब लोग कहते हों मेरा-मेरा, तब आप कहें हाँ, सब आपका। मेरा कुछ नहीं। हम तो आपके पीछे चलेंगे। उस घर का वातावरण ही बदल जाता है। वह घर स्वर्ग हो जाता है। मरने के बाद भी इससे अच्छा स्वर्ग क्या होगा?

प्रज्ञाचक्षु स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का नाम इस शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ चिन्तकों में है। उनका एक सूत्र है, "यदि सदा प्रेम चाहिए और सबसे सुन्दर और प्रगाढ़ परिवार चाहिए तो दूसरे के अधिकार की सुरक्षा और अपने अधिकार का त्याग करना।" सम्बन्ध बिगड़ते हैं अधिकारों की माँग से और सम्बन्ध बनते हैं, अधिकारों के त्याग से। जो अपना अधिकार छोड़ना सीख गया, उसे सबसे प्रेम करना आ जाएगा, उससे सब प्रेम करेंगे। जो अपने अधिकारों की माँग करता है, उससे सब चिढ़ते हैं, उससे दूर हटते हैं।

10- **ज्ञान का दान**- लर्नगीता में बारह सहस्त्र लोग निष्काम सेवा दे रहे हैं। उन्हें बदले में कुछ नहीं चाहिए, धन्यवाद भी नहीं। यह सब ज्ञान का दान ही तो है।

11- **भक्ति का दान-** जिससे मिले उससे राम-राम करते हैं, जय श्रीकृष्ण बोलते हैं तो दूसरे को भी राम-राम बोलना पड़ता है। आप मन्दिर जा रहे हो , दूसरे को भी मन्दिर लेकर जाओ। जो कभी मन्दिर नहीं जाता, उसको किसी भी बहाने से मन्दिर लेकर जाओ, यही है भक्ति का दान।

12- **सन्तोष का दान-** जीवन में सन्तुष्ट रहना सीखें। कोई कहे आपके लिए ये लाएँ, वो लाएँ तो कह देना कि अब मुझे कुछ नहीं चाहिए।

13-**विद्या का दान**- मैंने कुछ विद्या प्राप्त की, जैसे कुछ तकनीकी विद्या प्राप्त की, उसकी सेवा देना।

14- **मन्त्र दान-** मैंने कुछ अच्छे मन्त्र जाने, सीखे, जैसे भोजन मन्त्र, सूर्य को जल चढाने का मन्त्र, श्रीभगवान् को भोग लगाने का मन्त्र, गीताजी के मन्त्र आदि सीखकर दूसरों को सिखाना।

15- **दीक्षा का दान-** यह सबके लिए नहीं है। गुरु अपने शिष्य को शिक्षा का दान देता है।

16- **पुत्र दान**- अपने पुत्र को संसार के कल्याण के लिए संन्यासी बना देना, गुरु को समर्पित कर देना, किसी सेवा में समर्पित

कर देना।

17- **कन्यादान-** हम अपनी कन्या को उसके विवाह के समय अपने गोत्र का दान देते हैं।

18- **दातव्य मुक्ति दान**- किसी ने मुझसे ऋण लिया और मैं उसे उस ऋण से मुक्त कर दूँ, यही है दातव्य मुक्ति दान। परम श्रद्धेय दीनदयाल जी कहते थे कि साधक को कभी ऋण नहीं लेना चाहिए, क्योंकि यदि ऋण में ही मृत्यु हो गयी तो उसकी गति अत्यन्त खराब है। यदि आपसे किसी ने ऋण लिया और वह देने की स्थिति में नहीं है तो उसे अपने घर बुलाकर, हाथ में हाथ पकड़कर कह दो कि तुम्हारा ऋण माफ़ हुआ। तुम्हारा मेरा कोई ऋण नहीं है। उसको उस ऋण से मुक्त कर दो। उसकी मृत्यु के समय उसकी सद्गति हो जायेगी। यह बहुत बड़ा दान है।

बेंगलुरु में एक परिवार में एक बालक को कैंसर का रोग हो गया। वह अच्छे धनाढ्य परिवार का हिस्सा था। उसके पिता ने कहा कि जिसने भी जीवन में कभी भी मुझसे ऋण लिया है, मैं तुम्हारा सारा ऋण क्षमा करता हूँ। अगले जन्म में न मैं उनसे लेने आऊँगा और न ही वे मुझसे लेने आयेंगे।

19- **सत्कार का दान-** जो आता है उसका खूब सम्मान करो। दूसरे को सत्कार उसकी क्षमता से नहीं, अपनी क्षमता से देना चाहिए। हम दूसरों को जो सम्मान देते हैं, उससे हमारे चरित्र का पता चलता है। दूसरा कितना सम्मान पाने योग्य है, इसका विचार नहीं करना चाहिए। जो मिले, चाहे वह आयु, पद, धन में कितना भी छोटा क्यों न हो, उसका सत्कार करना चाहिए। जो यह करना सीख गया, वह दुनिया में प्रशंसनीय हो जाता है। जो जितना ज्यादा सत्कार देगा, उसका यश उतना ही अधिक बढ़ता है। हमारे यहाँ जो दूध वाला आता है, उसे भी भैया जी कहकर सम्बोधित करें और पानी आदि को पूछें। इसके विपरीत यदि हम अबे-तबे करके बात करते हैं तो मोहल्ले में अपयश फैलता है कि अमुक व्यक्ति तो सीधे मुँह भी बात नहीं करते। वह आपकी सब जगह बदनामी करता है। अपने जीवन को चमकाने का यह बड़ा अच्छा उपाय है कि अपने से छोटे से भी प्यार और सम्मान से बात करो।

20- **आसन का दान-** मेरे सामने कोई खड़ा है और मैं बैठा हूँ, तो यह गलत बात है। यदि मेरे सामने मुझसे बड़ा कोई व्यक्ति खड़ा है तो यह अपराध है, दोषयुक्त काम है। यदि कोई मुझसे छोटा भी आकर खड़ा हो, तब भी उसके लिए आसन देना, परन्तु यदि हम घर में सबसे बड़े हैं तो यह सब अपने लिए आशा न करें कि सब मुझे ही पूछें। आप अपने से छोटे को भी उसी सम्मान के साथ आसन दें जिसकी आशा छोटों से है। दान लेने का नहीं, देने का विचार करें।

21- **प्रिय का दान-** परिवार में, पड़ोस में, जिसे जो वस्तु प्रिय हो, उसे वही वस्तु दान दें।

22-**श्रेय का दान**- किसके लिए क्या वस्तु कल्याणकारक है, वह वस्तु दान देना। किसी को गीताजी, माला, तिलक, सहस्रनाम की पुस्तक देना।

23- **सुख का दान-** किसको किस बात से सुख मिलेगा, उसको वही देना।

24-**ब्रह्मदान**- यह दान सद्गुरु ही दे सकते हैं। श्रीराम जी ने कहा-

**मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा**।।

अर्थात् मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। सेठ जी ने इसे परम दान, परम सेवा कहा।

25- **समय का दान-** कोई जीवन के अन्तिम क्षणों में हैं, उसको श्रीभगवान् का नाम सुनाओ, श्रीमद्भगवद्गीता सुनाओ, उसका ध्यान श्रीभगवान् में लगा दो। इससे बड़ा कोई दान नहीं। ये पच्चीस भाँति के दान हम कर सकते हैं।

श्रीभगवान् ने कहा, "दातव्यं अर्थात् देना मेरा कर्त्तव्य है, इस भावना से दान देना चाहिए।"

यह मेरी पसन्द नहीं है, न ही मेरी भलमनसाहत है, न ही मैं किसी के लिए यह अच्छा कार्य कर रहा हूँ। मैं दूसरे पर उपकार कर रहा हूँ, ऐसा सोचकर किया तो दान राजस हो गया। श्रीभगवान् ने मुझे अधिक इसलिए दिया है कि जिनके पास कम है, उन्हें बाँटो। यह मेरा कर्त्तव्य है, ऐसा सोचना चाहिए।

ब्रहस्पति नीति में वैष्णव को आय का दसवाँ अंश दान करने को कहा है। आपकी वार्षिक आय एक लाख रुपये है तो दस हज़ार का दान दो। दस लाख है तो एक लाख का दान, पचास लाख रुपये की आय है तो पाँच लाख रुपये का दान, पाँच करोड़ रुपये की है तो पचास लाख रुपये का दान दो। साल की आय सौ करोड़ रुपये की है तो दस करोड़ रुपये का दान करो। दशमांश दान करो। दान देना और रिश्तेदारों को देना- दोनों अलग-अलग बातें हैं। शुक्रनीति में बीस प्रतिशत दान करने को कहा गया है।

श्रीभगवान् कहते हैं, हमारा उद्देश्य हो कि हमें दान देना चाहिए। बदले में हमें क्या मिलेगा? ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मैंने उनके लिए इतना कुछ किया और बदले में उन्होंने मुझे क्या दिया? यह विचार मन में आते ही दान की सात्त्विकता समाप्त हो गयी। मेरा कर्त्तव्य था, मुझे जो देना था, दे दिया। अब उसे मुड़कर देखा भी नहीं। उससे मुझे कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। बदले में मुझे धन्यवाद की भी आशा नहीं होनी चाहिए।

**देशे, काले च, पात्रे च।**

किस स्थान पर दान देना है? किस काल, समय में दान देना है? इसका विचार करना चाहिए। किस देश में जाकर दान देना है? कुम्भ में दान देकर आओ। जो इसका सदुपयोग करेगा, उसे दान दो।

सन्तों ने कहा है, "हमारी इक्कीस हज़ार, छह सौ साँसे हैं, इनका भी दसवाँ अंश दान करो। इक्कीस सौ साठ साँसे भजन में लगाओ। चौबीस घण्टों में से दो घण्टा चालीस मिनट भजन में लगाओ।"

**17.21**

**यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|**
**दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||**

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

**विवेचन-** जिसके पास जो योग्यता है, वह उसका दान करे। एक बार अकाल पड़ा। राजा बड़े अच्छे थे। राज पुरोहित ने कहा कि अभी अकाल आरम्भ ही हुआ है। आपका राज्य समृद्ध है, इस अकाल के लिए एक यज्ञ का आयोजन करिए। जब हम इस अकाल के निमित्त यज्ञ का आयोजन करेंगे तो देवता अवश्य प्रसन्न होकर वर्षा करेंगे। राजा ने विशाल योजना से एक सहस्त्र यज्ञकुण्ड बनवाये। राजा बड़ा सात्त्विक था। सेठों ने अपने धन के भण्डार खोल दिए। राजा को धन की कोई कमी नहीं पड़ी। किसी ने वृद्धों के लिए पालकी की व्यवस्था की, किसी ने यज्ञकुण्ड बनवाये, किसी ने भोजन की व्यवस्था की, किसी ने सोने के बक्से दे दिए। उत्तम प्रकार से तीस दिनों तक यह यज्ञ चला। आस-पास के राज्यों से लोग इस यज्ञ को देखने आने लगे। इतने सात्त्विक तरीके से यज्ञ किया गया कि पूर्णाहुति होते-होते वर्षा होने लगी। सब बड़े प्रसन्न हुए।

यह यज्ञ राज्य के बाहर बहुत बड़ी भूमि पर किया गया था। रात्रि में चोर-डाकू और जङ्गली जानवरों का भी डर होता था। पूर्णाहुति के बाद सबने निश्चय किया कि सब एक साथ चलेंगे। जिस-जिसका गाँव आता जाएगा, वह चला जाएगा। उन सबके साथ एक साधु भी चल रहे थे। दोपहर का समय था। साधु ने कहा कि हमारे चारों तरफ तो धूप है परन्तु हमारे ऊपर एक बादल छाया करके चल रहा है। हम मुड़ते हैं तो यह भी मुड़ जाता है। हम रुकते हैं तो यह भी रुक जाता है। हममें से किसी से श्रीभगवान् अति प्रसन्न हैं और उसको छाया देने के लिए बादल साथ चल रहा है। भीड़ ने कहा, महाराज आप ही के पुण्य प्रताप से हमें छाया मिल रही है। पर साधु ने कहा, ऐसा नहीं है। वह उस भीड़ से अलग होकर दूर चले गए। वह धूप में पहुँच गए पर

बादल वहीं भीड़ के ऊपर था। साधु ने कहा देखो, इसका मतलब वह कृपालु मैं नहीं हूँ।

फिर सबने सोचा कि अवश्य ही सेठजी होंगे, जिन्होंने अपने पूर्वजों का सोने का बक्सा दान दिया है। सेठ जी भीड़ से अलग हुए तो धूप में पहुँच गए। अब भीड़ ने आगे चलना आरम्भ किया तो बादल भी चलने लगा। अब सब बारी-बारी से अलग होने लगे। भीड़ में फटे कपड़े पहने एक वृद्धा चल रही थी। सबने वृद्धा को भी छाया से दूर जाने को कहा। जैसे ही वह अलग गयी, बादल उसके साथ-साथ चलने लगा। सब समझ गये कि यह इसी के साथ चल रहा है। फिर सबने आश्चर्य से उससे पूछा कि बताओ तुमने क्या किया है? उसने कहा, मेरे पास न परिवार है, न धन है। मैं क्या दे सकती हूँ? मेरे पास एक फूटी कौड़ी थी, वही दी थी। जो भोजन मिलता था, उसमें से एक रोटी मैं खाती थी और बाकी आस-पास घूम रहे पशु-पक्षियों को खिला देती थी। साधू महाराज ने कहा, तेरी सेवा तो सर्वोत्तम है। इन सेठ जी के पास और भी सोने के बक्से होंगे। इन्होने उसमें से एक बक्सा दे दिया परन्तु तेरे पास तो एक ही कौड़ी थी। तूने वह भी दे दी और तो और अपने हिस्से का खाना भी इन निरीह पशुओं को खिला दिया। तेरा दान तो सर्वोत्तम है। दान कितना दिया यह मायने नहीं रखता, उसकी हैसियत कितनी है यह भी देखना पड़ेगा।

कुम्भ में ऐसे लोग भी देखने को मिले जिनके पास पैर में पहनने को चप्पल भी नहीं थी और ब्राह्मण को अत्यन्त श्रद्धा से इक्यावन रुपये दे रहे थे। जो बड़ी-बड़ी गाड़ियों में आते थे, वे सौ-सौ रुपये के लिए ब्राह्मण से झगड़ रहे थे। सारी बात श्रद्धा और भावना की है।

भगवान् बुद्ध का एक प्रसङ्ग है। गाँव में एक कर्कशा बुढ़िया थी। जैसे ही बुद्ध उसके द्वार पर भिक्षा माँगने जाते, वह गाली देने लग जाती, "चले आते हैं रोज रोटी माँगने।" उनके शिष्य उनको वहाँ जाने से मना करते तो वह कहते कि 'भिक्षा ही तो माँगनी है, गाली भी ले लेता हूँ।" आठ दिन तक रोज बुद्ध जाते रहे और रोज वह उनको गाली देती। नौवें दिन उसने बुद्ध के भिक्षा पात्र में चूल्हे की राख डाल दी। बुद्ध तो खुश होकर नाचने लगे। शिष्य बोले, "महाराज! इसने आपका पात्र खराब कर दिया। अब इसे साफ़ करने नदी पर जाना पड़ेगा।" भगवान् बुद्ध ने कहा, "तू राख देखता है! मैं उसका उठा हुआ हाथ देखता हूँ। जिसने कभी कुछ नहीं दिया था, आज कुछ देने के लिए उसका हाथ उठा।" अब वह वृद्धा रोने लगी।

यह देने की आदत लगना ही महत्त्वपूर्ण है। सुबह से शाम तक अनेक प्रकार के दान दिए जा सकते हैं। किसी को प्रसन्नता का दान, किसी को सुरक्षा, किसी को संस्कार। पच्चीस प्रकार के दान दे सकता हूँ। देना कर्त्तव्य है और बदले में कुछ नहीं चाहिए। देश, काल और पात्र देखकर जो दान किया जाता है, वह सात्त्विक दान है।

मोहल्ले में जागरण के लिए चन्दा माँगने आते हैं, उन्हें बहुत लोग मना कर देते हैं। शाम को आना कह कर टाल देते हैं। शाम को भी वे आ जाते हैं। बहुत कहने पर मुश्किल से दस रुपये देते हैं पर चन्दा माँगने वाले कहते हैं कि हज़ार रुपये दे दो सेठ जी। करते-करते सौ रुपये पर बात ख़त्म होती है। अन्दर आकर कहते हैं कि बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाया है। यह क्लेशपूर्वक किया हुआ दान है। दूसरा है, बदले में क्या मिलेगा? इस भावना से किया गया दान। यहाँ दान दूँगा तो मेरी फोटो छपेगी। यहाँ दान दूँगा तो मुझे माला पहनाई जाएगी अथवा मुझे ट्रस्टी बना दिया जाएगा।

**प्रत्युपकारार्थं**- बदले में मुझे कुछ मिलेगा इस भावना से किया गया दान। यह बुरी बात नहीं है, यह राजस है। नहीं देने से तो किसी लालसा से देना ही अच्छा है। पुण्य की भावना से दिया गया दान भी राजस है।

**17.22**

**अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|**
**असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||**

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

**विवेचन-** हे अर्जुन! जो दान बिना सत्कार के, क्लेशपूर्वक, अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह दान तामस

कहा गया है। अपने घर की कामवाली को नीचा दिखाकर, फेङ्क कर साड़ी दी, यह तामस दान है। चार बातें सुनाकर (माँगने को चले आते हैं, ले, लेकर जा कहकर) दान दिया। किसी को भी दान दो तो उसे नीचे दिखाकर, उसका अपमान कर के दान मत दो।

**तुलसी पञ्छी के पिए, घटे न सरिता नीर। दान दिए धन न घटे, जो सहाय रघुवीर।।**
**पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम। दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।**
**कद ऊँचा तो कर लिया, ऊँचे रखो विचार। दान धर्म जो न किया, जीवन है बेकार।।**

दान करना ही महत्त्वपूर्ण बात है। धन का दान अलग बात है। पच्चीस प्रकार के दान बताये गए हैं, जो भी मैं कर सकता हूँ। श्रीभगवान् ने मुझे दो हाथ दिए, देने वाला बनाया फिर भी मैं कटोरा हाथ में लेकर घूम रहा हूँ। श्रीभगवान् यह और दे दो, वह और दे दो।

दान दो और खूब दो। भूखे को रोटी के लिए कभी देश-काल का विचार नहीं करना। एकदम निकृष्ट हो, तब भी भोजन देना। दूर अज्ञान लोगों को दान देना आसान होता है, अपने आस-पास नौकरों को कुछ भी देना कठिन होता है। कभी अपनी काम वाली को कहते हैं, "कल ही तो तुझे साड़ी दी थी, आज ही छुट्टी माँग रही है", इसलिए दी थी क्या साड़ी? ऐसी बात से हमें बचना चाहिए। अपने आस-पास वाले कर्मचारी का पहला अधिकार है दान लेने का और बदले में कुछ आशा भी नहीं करनी चाहिए, धन्यवाद की भी नहीं। किसी प्रकार का वो अहसान माने, इस बात की आशा भी नहीं करनी चाहिए।

**17.23**

## ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
## ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

**विवेचन- ऊँ, तत् और सत्** - इन तीन प्रकार के नामों से परमात्मा का सङ्केत किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है। अगले चार श्लोकों में भगवान ने ॐ की व्याख्या की है, ॐ तत, सत।

हमारे शब्द को ब्रह्म कहा गया। **शब्दं ब्रह्म।।**

**अ, उ, म इन तीनों को मिलाकर ॐ बनता है।**

इसको प्रणव, ब्रह्म, निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार, शब्द, ईश्वर, माया, ओङ्कार कहा गया। ॐ में जो म की ध्वनि है और जब घण्टा बजाते हैं, (टन), ये दोनों एक ही ओङ्कार हैं। संसार की प्रथम उत्पत्ति का कारण ओङ्कार है। श्रीभगवान् जब सृष्टि की रचना करते हैं तो सबसे पहले ओङ्कार की रचना होती है। ओङ्कार से शब्द बना। बाइबिल में और बाकी धर्मग्रन्थों में शब्द को ब्रह्म कहा है। बाइबिल में एक वाक्य आया है-

**संसार के आरम्भ में केवल शब्द था। यही शब्द संसार बना। इस शब्द में ही संसार छुपा हुआ है।**

**(In the beginning of the world, there was only word, word converted to the world. World is hidden into the word.)**

पञ्चतत्त्वों में पहला तत्त्व है आकाश और इस पञ्चमहाभूत का तन्मात्रा है शब्द। शब्द की उत्पत्ति होती है आघात से, टकराव से। जब तक आघात नहीं, तब तक शब्द की उत्पत्ति नहीं हो सकती। हमारी स्वरनली भी टकराती है तभी शब्द निकलते हैं। वहाँ घर्षण या टकराव नहीं होगा तो हम बोल नहीं सकते। आकाश और वायु में जब टकराव होता है तो पहले शब्द का निर्माण होता है। खाली आकाश में शब्द नहीं हो सकता। आकाश और वायु में जब मन्थन होता है, उससे जल की उत्पत्ति होती है और इसमें जब शब्द की टक्कर होती है तो अग्नि की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सारी सृष्टि का आरम्भ होता है।

LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

**ॐ - अ, उ, म, ्**

प्रणव, ब्रह्म, निर्गुण, सगुण, साकार, निराकार, शब्द, ईश्वर, माया, ओंकार

एक अनंत यात्रा (प्रभव-प्रलय-प्रभव....)

| खंड | उच्चारण | शब्द | स्थान | रूप | देव | स्थिति | कार्य | करण | गुण |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अ | अकार | बैखरी | कंठ | स्थूल | ब्रह्मा | जाग्रत | उत्पति | कर्मेन्द्रियाँ | रजोगुण |
| उ | उकार | मध्यमा | हृदय | सूक्ष्म | विष्णु | स्वप्न | पुष्टि | ज्ञानेन्द्रियाँ | सतोगुण |
| म | मकार | पश्यन्ति | नाभि | कारण | शंकर | सुषुप्ति | संहार | अंतःकरण | तमोगुण |
| ् | हलंत | परा | व्यापक | शून्य | ब्रह्म | तुरीय | सत्ता | अस्तित्व | गुणातीत |

गीता परिवार

**अ, उ, म और हलन्त ये चार वर्ण हैं।** इन चार वर्णों की बहुत गहरी वैज्ञानिक व्याख्या है। इनका उच्चारण अकार, उकार, मकार और हलन्त है।

**अकार-** का शब्द है बैखरी अर्थात् स्थूल, जो कण्ठ से बोला जाए। ब्रह्मा इसके देवता हैं और यह जाग्रत स्थिति में होता है। इसका कार्य उत्पत्ति है कारण कर्मेन्द्रियाँ हैं, रजोगुण इसकी स्थति है।

**उकार**- मध्यमा अर्थात् हृदय से होता है। सारे शब्द बोलकर ही नहीं बोले जाते, आँखों से भी बोले जाते हैं। स्पर्श से भी बोले जाते हैं। धीरे से किसी का हाथ दबाकर बोल दिया, चुप हो जाओ, मत बोलो। यह सूक्ष्म रूप है। विष्णु इसके देवता हैं। स्वप्न इसकी स्थिति है। पुष्टि इसका कार्य है। ज्ञानेन्द्रियाँ इसका कारण हैं। सतोगुण इसकी स्थिति है।

**मकार**- इसका शब्द पश्यन्ति है, यह नाभि से होता है। इसका रूप कारण है। सङ्कल्प मात्र से घटना घट जाती है। सन्तों के साथ ऐसा होता है। स्वामी रामतीर्थ नाम के एक सन्त थे। जँगल में बैठे थे। अचानक इच्छा हुई कि शिकञ्जी पी जाए। एक सेठ जी थैले में कुछ नीम्बू, चीनी, पानी लेकर चले आये। बोले आज मेरे मन में आया कि आप जङ्गल में बैठते हैं, तो आपको शिकञ्जी पिलाने की इच्छा हुई। महाराज जी बोले, यह बात तेरे मन में नहीं आयी। यह बटन कहीं और से दबा और उसने तुझे यहाँ भेजा। तू नीम्बू छोड़ और चला जा। महाराज जी ने सोचा "यह तो बहुत गलत बात है। मेरे मन में भोग की इच्छा हो और उससे तकलीफ किसी और को हो।" उन्होंने नीम्बू उठाये और गङ्गा जी में फेंक दिए।

सङ्कल्प मात्र से सिद्धि है। मेरे मन में सङ्कल्प आया गीताजी सीखनी है और तुरन्त लिङ्क आ गया। सङ्कल्प आया और घटना घट गयी। यह मकार है। शङ्कर इसके देवता हैं, सुषुप्ति इसकी स्थिति है। संहार इसका कार्य है। अन्तःकरण इसका कारण है और तमोगुण इसकी नीति है।

**हलन्त**- यह परा है। यह सङ्कल्प से भी परे है।

**अनुभव गम्य भजहिं जेहि सन्ता**

ज्ञानेश्वर महाराज जी बैठे हैं। चाँद देव जी शेर पर चलकर आते हैं। ज्ञानेश्वर जी कहते हैं, **ए दीवार, तू चल** और निर्जीव भित्तिका चल देती है। भित्तिका सजीव सी चल दी, यह व्यापक है। शून्य इसका रूप है। परब्रह्म इसके देवता हैं। तुरीय अवस्था है। आप सोये नहीं हैं और जाग भी नहीं रहे हैं। आप कहीं और ही पहुँच गए। समाधि में कहीं और ही पहुँच जाते हैं। सत्ता इसका कार्य है, अस्तित्व इसके कारण हैं और यह गुणातीत है। सत्त्व, रज और तम तीनों से परे है।

ऊँकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सारे वर्णों से अतीत है। यह शब्द भी है, वर्ण भी है और ब्रह्म भी है।

ॐ तत्, सत् गीता जी के सारे अध्यायों के अन्त में पुष्पिका आती है जो वेदव्यास जी ने लिखी है।

**ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे**

कोई भी काम करने के बाद ॐ तत्, सत् कह दिया तो उसमें जो भी कमी रह गयी, उसे देवता पूरी करेंगे इसलिए प्रवचन के पश्चात बड़े-बड़े महात्मा हरी ॐ तत्, सत् बोलते हैं।

**ॐ तत्, सत् सच्चिदानन्द भगवान् का नाम है।**

**17.24**

**तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|**
**प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||**

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

**विवेचन-** इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा **'ॐ'** इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। अङ्ग्रेजी वर्णमाला में छब्बीस अक्षर होते हैं। इसमें से कोई एक अक्षर पकड़ लें। क्या इसे पूर्ण मान सकते हैं? लोग इसमें फँस गए। मैं वैष्णव हूँ तो विष्णु को मानूँगा। मैं शैव्य हूँ तो शिव को मानूँगा। दुर्गा जी, गणेशजी को मानूँगा।

गजेन्द्रमोक्ष में जब गजेन्द्र ने प्रार्थना की, तत् शब्द आया। विष्णु जी प्रकट हो गए, जबकि विष्णु तो कहा ही नहीं था। तत् कहते समय उसने भावना वही की। **तत् अर्थात् वह**। विष्णु भगवान् चले आये। अनेक उपनिषदों का पहला मन्त्र होता है **ॐ।**

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।**

पूर्ण में पूर्ण को मिला दो तो भी पूर्ण होता है। पूर्ण में से पूर्ण को निकाल दो तो भी पूर्ण रहता है। पूर्ण में से आधा निकालो तो भी पूर्ण बचता है। पूर्ण में आधा और मिला दो तो भी पूर्ण रहता है।

शून्य में से आधा हटा दो तो शून्य ही बचेगा। शून्य में शून्य जोड़ दो तो शून्य ही रहेगा। शून्य में से एक, दो भाग निकाल दो तो भी शून्य बचेगा। उसमें कुछ भी जोड़ो, घटाओ, शून्य ही रहेगा क्योंकि वह पूर्ण है। छब्बीस अक्षर में से एक निकाल दो तो पच्चीस बचेंगे लेकिन ॐ में से कुछ भी निकाल दो, ॐ ही बचेगा।

**इदं-** जो इन्द्रियों में गोचर है।

**अदः** जो उसके परे है।
जो आपने मान लिया वह। राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव किसी को मानते हों, वह है तत्। गुरु के नाम को, पितरों को, मूर्ति को, मन्त्र को जिसको भी मानते हों।
भगवान् शङ्कराचार्य जी ने लिखा,

**एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**

एक ही ब्रह्म है, दूसरा कुछ है ही नहीं, इसलिए आया **सत्।** तीसरा शब्द **ॐ।**

**तत्-उस सम्पूर्ण को सङ्केत करने वाला।**

**सत्- उस सम्पूर्ण को सङ्केत करने वाला, वह है सत्।**
**सत् के दो अर्थ हैं।**

एक है सत्त्व, हमेशा रहने वाला, जो कभी घटता-बढ़ता नहीं है। दूसरा है सत्य।

**'आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसि भी सच'**

ॐ तत्, सत् कहने के बाद कुछ बचा नहीं इसलिए कहते हैं, **हरी ॐ तत्, सत्।**

**17.25**

**तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|**
**दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||**

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

**विवेचन-** तत् नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है, ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर, अनेक प्रकार के यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

**17.26**

**सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|**
**प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||**

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।

**विवेचन-** हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है। उत्तम कर्म में सत् का प्रयोग किया जाता है। हम अच्छे लोगों के साथ बैठते हैं तो कहते हैं सत्सङ्ग हो गया। अच्छा कर्म किया तो सत्कर्म हो गया। अच्छी भावना से जोड़ दो तो सद्भावना हो गयी। जिस बात में भी अच्छा करना है वो सत्। **हरी ॐ तत्, सत्** में सब कुछ आ गया, परन्तु सब कुछ आने पर भी यदि श्रद्धा नहीं है तो काम नहीं बनेगा।

**17.27**

**यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|**
**कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||**

यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

**विवेचन-** यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में जो स्थिति है, वह भी सत्-ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी सत्-ऐसा ही कहा जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि सब बातें ठीक हैं। अन्तिम श्लोक में श्रद्धा कौन सी है? इस बात का उत्तर दिया है।

**17.28**

## अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
## असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

**विवेचन-**हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और तपा हुआ तप तथा जो कुछ किया जाये, वह सब असत् हो जाता है। उसका फल न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता। जब श्रद्धा से दान दिया जाएगा, हवन किया जाएगा, तप किया जाएगा तभी उसका फल होगा वरना वह किसी के कल्याण का नहीं है। इस लोक में भी नहीं, इस लोक के बाद भी नहीं।

"श्रद्धात्रयविभागयोग में श्रीभगवान् इस बात को यह कह कर ही पूर्ण करते हैं कि "श्रद्धा के बिना सत् भी असत् का रूप हो जाता है", इसलिए जीवन में जो कुछ भी करना श्रद्धा के साथ करना। इस तरह अपूर्णता भी पूर्ण हो जायेगी।

इसके उपरान्त हरिनाम सङ्कीर्तन के साथ विवेचन सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

### प्रश्नोत्तर

**प्रश्नकर्ता-** मलय भैया
**प्रश्न-** अनेक बार ऐसी स्थिति आती है कि कुछ व्यक्ति कहते हैं कि मुझे भोजन करवा दीजिये। उनसे पूछने पर वे माँसाहार की इच्छा व्यक्त करते हैं। ऐसे में हमें क्या करना चाहिए?
**उत्तर-** माँसाहार खिलाने से आप पाप के भागी बन जाएँगे। आप उन्हें कह सकते हैं कि "यदि आप भूखे हैं तो मैं आपकी क्षुधापूर्ति के लिए दान करूँगा किन्तु आपकी रुचि को पूरा करने का दायित्त्व मेरा नहीं है।" दान का अर्थ किसी की आवश्यकता की पूर्ति करना है, उसके भोग-विलास की वस्तुओं की माँग की पूर्ति करना नहीं।

**प्रश्नकर्ता**- मलय भैया
**प्रश्न-** आपने बताया कि ॐ में तीन वर्ण हैं, जिनमें अ में ब्रह्माजी का वास होता है, उ में विष्णुजी का तथा म में शिवजी का वास होता है। यह समझ में नहीं आया। आपने यह भी बताया कि यह सात्त्विक, तामसिक तथा राजसिक है।
**उत्तर-** हमारे यहाँ सब बातों में अधिष्ठान देवता होते हैं। प्रत्येक अक्षर के अधिष्ठान देवता के आधार पर ॐ में भी चार देवताओं की स्थिति है- ब्रह्माजी, विष्णुजी, शिवजी तथा परब्रह्म परमात्मा, ये चार ही प्रकृति के मूल नियन्ता हैं। इन चारों में इस शब्द ॐ में ब्रह्माजी, विष्णुजी तथा शिवजी कृमशः उत्पत्ति, पालनकर्ता तथा संहारक हैं। परब्रह्म की स्थिति उत्पत्ति तथा संहार के मध्य की स्थिति है। ॐकार में इन चारों की स्थिति बताने के लिए वहाँ देवों की प्रतिस्थापना है।

सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक- इन तीन तत्त्वों से मिलकर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड निर्मित हुआ है, अतः ॐ में भी ये तीनों तत्त्व होंगे।

**प्रश्नकर्ता-** मनोज भैया
**प्रश्न-** जब हम कुछ अच्छा कार्य करते हैं, जैसे हमने किसी को श्रीमद्भगवद्गीता सीखने के लिए प्रेरित किया और कुछ समय के पश्चात् उन्होंने बताया कि श्रीमद्भगवद्गीता सीखकर बहुत अच्छा लग रहा है, तो हमें अहङ्कार आ जाता है। उस समय हमें क्या करना चाहिए? क्या उस समय हम "ॐ तत्सत्" बोल सकते हैं?
**उत्तर-** देखिये! हम सब अभी गुणातीत तो नहीं हो पाये हैं कि हमारे मस्तिष्क में किसी प्रकार का कोई विकार आयेगा ही नहीं। हमें यह देखना है कि कितना अधिक अहङ्कार आता है? जितना अधिक अहङ्कार आता है, हम उतना अधिक राजसिक गुण की ओर जाते हैं तथा जितना कम आ रहा है, हम उतना अधिक सात्त्विकता की ओर जाते हैं। हमें उस स्थिति में अधिक समय तक फँसना नहीं है।

आप उस समय बिलकुल "ॐ तत्सत्" बोल सकते हैं।

**प्रश्नकर्ता-** योगेश भैया
**प्रश्न-** भैया आपने एक विवेचन में बताया था कि जिन जीवों की उत्पत्ति हुयी है, उनके कर्मों के अनुसार उनकी मृत्यु निश्चित है तथा पुनर्जन्म निश्चित है। फिर मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है?
**उत्तर-** मोक्ष केवल मनुष्य जीवन में मिल सकता है। जब आप अपने ज्ञानमार्ग तथा भक्तिमार्ग से अपने ज्ञान की अग्नि से अपने कर्मफलों को समाप्त कर देते हैं, "ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणि", तब आपका अगला जन्म नहीं होगा।

**प्रश्नकर्ता-** नलिनी दीदी
**प्रश्न-** यदि हम व्रत की पूर्णाहुति करते हैं तो उसमें सबको भोजन हेतु आमन्त्रित करते हैं। आजकल अनेक स्थानों पर देखा गया है कि कुछ व्यक्ति विधवा स्त्री को भी आमन्त्रित करते हैं। क्या यह उचित है?
**उत्तर-** सामान्य परिस्थिति में यह उचित है किन्तु किसी पर्व पर या किसी विधि में यह उचित नहीं है।

**ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय:।।**

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

---

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

**विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!**
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

---

**जय श्री कृष्ण !**
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

---

**हर घर गीता, हर कर गीता!**
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

---

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||